प्रवचन-२१, गाथा-१३,१४, श्लोक-२३,२५, सोमवार, फाल्गुन कृष्ण १०, दिनांक २२-०३-१९७१

१३वीं गाथा में ३४वें पृष्ठ पर है न, हिन्दी। है ? ३४, दोनों में समान। ३४वें पृष्ठ पर। पहली लाईन।

इस प्रकार कार्यरूप और कारणरूप से स्वभावदर्शनोपयोग कहा। आया सेठी ? क्या कहा ? यह आत्मा जो वस्तु है, उसमें दर्शनोपयोग अन्दर में त्रिकाल है। उसे यहाँ कारणरूप से कहा है। कारणरूप दर्शनोपयोग। आत्मा वस्तु है वस्तु, उसमें त्रिकाल दर्शनोपयोग है, उसे कारणदर्शनोपयोग कहा और उसमें से केवलदर्शनोपयोग प्रगट हुआ, वह कार्यदर्शनोपयोग हुआ। समझ में आया ? सेठी ! क्या ? दो बातें हुई।

जिसे केवलज्ञानरूपी अथवा केवलदर्शन कार्योपयोग प्रगट करना हो, तो उसे कारण-उपयोग जो त्रिकाली आत्मा में है, उसका आश्रय करना चाहिए, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? अपना स्वरूप चैतन्य में त्रिकाल दर्शनोपयोग ध्रुवरूप पड़ा है, उसे कारणस्वभाव-उपयोग कहा गया है और उसमें से केवलदर्शनोपयोग प्रगट हुआ, उसे कार्यस्वभाव-उपयोग कहा गया है। उसका अर्थ कि केवलदर्शनोपयोग का कारण त्रिकाल दर्शनोपयोग है। उससे वह प्रगट होता है। समझ में आया ? पहली बात कल बहुत चल गयी है। नोंध थी न ? कारणदृष्टि का बहुत कहा था।

त्रिकाल आत्मा, जैसे अविनाशी त्रिकाल वस्तु आत्मा है, वैसे उसमें दर्शनोपयोग अथवा दृष्टि अथवा स्वरूप श्रद्धान, वह अन्दर में त्रिकाल पड़ा हुआ है। उसे यहाँ कारणदृष्टि कहते हैं, कारणदर्शनोपयोग कहते हैं और स्वरूपश्रद्धानमात्र श्रद्धान की अपेक्षा से कहते हैं। गजब भाई ! और उससे प्रगट हो, वह कार्यदृष्टि, कार्यदर्शनोपयोग इत्यादि कहा जाता है।

विभावदर्शनोपयोग अगले सूत्र में (१४वीं गाथा में) होने से, वहीं दर्शाया जायेगा। यह तो स्वभावदर्शनोपयोग की व्याख्या हुई। विभावदर्शनोपयोग की व्याख्या १४वीं गाथा में आयेगी।

अब, १३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं— जंगल में बसनेवाले दिगम्बर मुनि सन्त थे।

आत्मध्यानी, ज्ञानी, अमृत के-अमृत के प्रवाह में अनुभव करते थे। ऐसे मुनि श्लोक कहते हैं, देखो, २३। ऊपर २३वाँ श्लोक है।

श्लोक-२३

(इन्द्रवज्रा)

दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मकमेकमेव चैतन्यसामान्यनिजात्मतत्त्वम्।
मुक्ति-स्पृहाणा-मयनं तदुच्चैरेतेन मार्गेण विना न मोक्षः।।२३।।

(वीरछन्द)

दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो एक निजातम चित् सामान्य।
वह प्रसिद्ध शिवपथ मुमुक्षु को, इसके बिना न मोक्ष सुजान॥२३॥

***श्लोकार्थ :*— दृशि-ज्ञप्ति-वृत्तिस्वरूप (दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से परिणमित), ऐसा जो एक ही चैतन्यसामान्यरूप निज आत्मतत्त्व, वह मोक्षेच्छुओं को (मोक्ष का) प्रसिद्ध मार्ग है; इस मार्ग बिना मोक्ष नहीं है॥२३॥**

श्लोक-२३ पर प्रवचन

दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मकमेकमेव चैतन्यसामान्यनिजात्मतत्त्वम्।
मुक्ति-स्पृहाणा-मयनं तदुच्चैरेतेन मार्गेण विना न मोक्षः।।२३।।

आहा..हा..! नीचे उसका अर्थ है।

श्लोकार्थः—दृशि... दृशि अर्थात् दर्शन / सम्यग्दर्शन। अपना शुद्धध्रुव चैतन्य की प्रतीति अनुभव में होना, ऐसा सम्यग्दर्शन। त्रिकाल ध्रुवज्ञायक कारण प्रभु, अपना निज त्रिकाल स्वभाव, उसकी प्रतीति करना, अनुभव करके यह आत्मा शुद्ध आनन्द है, ऐसा अनुभव करके प्रतीति करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन, मोक्ष का मार्ग है। कहो, पण्डितजी! गजब बात।

ज्ञप्ति.... दूसरा बोल है न ? ज्ञप्ति। अपना निज शुद्ध ध्रुवस्वरूप, परमात्मा निजस्वभाव का ज्ञान करना। स्वरूप भगवान आत्मा त्रिकाली आनन्द आदि ज्ञायकभाव का धारक, ऐसे ध्रुवस्वभाव का ज्ञान करना, वह ज्ञान है। वह मोक्ष का मार्ग है। भारी सूक्ष्म! और तीसरा...

वृत्तिस्वरूप... चारित्रस्वरूप। भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु में लीन होना, अतीन्द्रिय आनन्द ध्रुव में लीन होना, रमना, जमना, अतीन्द्रिय आनन्द का विशेष उपभोग करना, उसका नाम चारित्र है। समझ में आया ? देह की क्रिया चारित्र नहीं; नग्नपना, वह भी चारित्र नहीं; पंच महाव्रत का विकल्प / राग उठे, वह भी चारित्र नहीं। समझ में आया ? भगवान आत्मा नित्यानन्द सहजानन्द की मूर्ति आत्मा है, उसके श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक शुद्धस्वरूप में लीन (होना) रमना, जमना, चरना, आनन्द के अनुभव में चरना, उसका नाम भगवान चारित्र कहते हैं।

इन **(दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से परिणमित),...** ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से परिणमित अवस्था में उसकी दशा होना। **ऐसा जो एक ही चैतन्यसामान्यरूप निज आत्मतत्त्व,...** आहा..हा..! ऐसा जो एक चैतन्यस्वभाव सामान्यस्वरूप-भेद पड़े बिना। मात्र चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... चैतन्य... सदृश स्वभावरूप ऐसा आत्मतत्त्व। गजब भाई! सन्तों की वाणी देखो! भगवान आत्मा यह शरीर, वाणी तो नहीं, कर्म नहीं, पुण्य-पाप नहीं, एक समय की विकास की दशा है, वह भी नहीं और गुणभेद भी नहीं। एकरूप त्रिकाल। **एक ही चैतन्यसामान्यरूप निज आत्मतत्त्व,...** सामान्य चैतन्यस्वभाव ध्रुव, एकरूप ऐसा सामान्य चैतन्यस्वभाव। सामान्य अर्थात् भेद पड़े बिना एकरूप चैतन्यसामान्य तत्त्व, ऐसा जो आत्मतत्त्व, वह **निज आत्मतत्त्व,...** भगवान का तत्त्व भी नहीं। आहा..हा..! तीर्थंकर परमेश्वर जो हुए, धर्म की शरण में वह चीज़ भी नहीं। आहा..हा..! उसमें तो निज आत्मा का शरण है। आहा..हा..! पण्डितजी! मार्ग गजब, भाई!

एक ही चैतन्यसामान्यरूप... ध्रुव, नित्यानन्द चैतन्यस्वभावस्वरूप, ऐसा जो आत्मतत्त्व, भाव, स्वभाववान वह निजात्म तत्त्व। वह अपना आत्मस्वभाव, आत्मतत्त्व, उसका आश्रय करने से **मोक्षेच्छुओं को (मोक्ष का)...** इच्छुक - इच्छा करनेवाले को मोक्ष का मार्ग वहाँ से शुरु होता है। आहा..हा..! **निज आत्मतत्त्व, वह मोक्षेच्छुओं को (मोक्ष का) प्रसिद्ध मार्ग है;...** देखो! क्या कहते हैं ? बहुत मार्मिक बात है। अनन्त काल में इसने निज आत्मतत्त्व की शरण ली ही नहीं। वैसे तो मांगलिक में कहते हैं न! अरिहन्ता

शरणम्, सिद्धा शरणम्, साहू शरणम्, केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणम् – मांगलिक में ऐसा आता है या नहीं? वह तो व्यवहार की बात है, भगवान! निश्चय से तो अपना ध्रुव चैतन्यमूर्ति भगवान, वह निज शरण है। समझ में आया? आहा..हा..!

निज आत्मतत्त्व,... अपना निज स्वरूप। त्रिकाल अस्ति सत्तामात्र शुद्धस्वभाव का भण्डार भगवान, ऐसा आत्मतत्त्व। **वह मोक्षेच्छुओं को (मोक्ष का) प्रसिद्ध मार्ग है;...** यह आत्मतत्त्व, वही मोक्ष का प्रसिद्ध मार्ग है अर्थात् उसके आश्रय से ही उत्पन्न होता है, वह मोक्षमार्ग। भारी सूक्ष्म बात, भाई! क्या कहा, समझ में आया? अन्दर आत्मा जो वस्तु है वस्तु, अनादि-अनन्त—आदि और अन्तरहित—और उसका स्वभाव, ज्ञान आदि। सामान्य चैतन्य, सामान्य अर्थात् एकरूपस्वरूप। ऐसे सामान्य स्वभावरूप जो आत्मतत्त्व है, वह मोक्ष की इच्छावाले जीव को उसी आत्मतत्त्व का शरण हुआ, वही मोक्षमार्ग है। लो, यहाँ दो मोक्षमार्ग है, इससे इनकार करते हैं। निश्चय भी मोक्षमार्ग है और व्यवहार भी मोक्षमार्ग है, इससे आचार्य इनकार करते हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव सन्त जंगलवासी थे। मुनि तो पहले जंगल में ही रहते थे। समझ में आया? महा आनन्दस्वरूप में मस्त, बाहर में नग्नदशा, वस्त्र का एक टुकड़ा भी नहीं, ऐसी सन्तों की दशा थी। वे जंगल में रहते थे। वीतरागमार्ग में, हों! दूसरे मार्ग में नग्न रहे, वह मार्ग नहीं। समझ में आया? आहा..हा..!

भगवान आत्मा अन्तर में सामान्य अर्थात् एकरूप। आनन्द-ज्ञान चैतन्य सामान्य आदि सदृश शक्तियाँ पड़ी हैं। ऐसी सदृश शक्ति का तत्त्व जो भगवान आत्मा वही एक मोक्षमार्ग है अर्थात् उसका आश्रय करने से मोक्षमार्ग उत्पन्न होता है। गजब बात है। है? श्लोक है देखो! अन्दर श्लोक है। पुस्तक रखी है या नहीं?

निज आत्मतत्त्व,... कैसा निज आतमत्त्व? कि एक चैतन्यसामान्यरूप, सदृश स्वभाव का पिण्ड भगवान आत्मा, **वह मोक्षेच्छुओं को (मोक्ष का) प्रसिद्ध मार्ग है;...** अनादि से प्रसिद्ध है, ऐसा कहते हैं। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग में वह तो प्रसिद्ध है। समझ में आया? आत्मतत्त्व भगवान, नित्यानन्द प्रभु, ध्रुवस्वभावी, एक स्वभावी, सामान्य स्वभावी सदृश ज्ञान-आनन्द आदि अनन्त स्वभावी वस्तु, वह आत्मतत्त्व ही मोक्षमार्ग है। अर्थात् उस आत्मतत्त्व के आश्रय से उत्पन्न हुआ, वही मोक्षमार्ग है। पर के आश्रय से, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि विकल्प है, वह मोक्षमार्ग नहीं – ऐसा कहते हैं। आहा..हा..!

कहो, पण्डितजी! इसमें ऐसा अर्थ है? ये जयपुर में संस्कृत के प्रोफेसर हैं। ये हमारे जयपुर के वृद्ध हैं। समझ में आया? जयपुर जाना है न? पन्द्रह दिन तो कहे हैं।

मुमुक्षु : इक्कीस दिन।

पूज्य गुरुदेवश्री : कितने?

मुमुक्षु : इक्कीस।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, मैंने कहा ही नहीं। तुमने अपने आप कहा है। यह तो पन्द्रह दिन कहा है। कदाचित् शरीर अनुकूल हो तो बीस दिन, बस। इक्कीस दिन नहीं और यह कहाँ से निकाला? तुम लोभी हो गये। समझ में आया?

कहते हैं, आहा..हा..! प्रभु! तेरे पास तो भण्डार भरा है। तेरे स्वभाव में तो महाभण्डार-खजाना है। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, सामान्य अनन्त स्वभाव पड़ा है। ऐसे आत्मतत्त्व भगवान (में) अन्तर्मुख दृष्टि करके, विकल्प और निमित्त का लक्ष्य छोड़कर, भगवान आत्मा निज आत्मतत्त्व का जो अवलम्बन लेता है, वही मोक्ष का मार्ग प्रसिद्ध है। वीतराग जिनवर तीर्थंकरदेव के मार्ग में यह मार्ग अनादि से प्रसिद्ध है। समझ में आया?

इस मार्ग बिना मोक्ष नहीं है। लो, अस्ति-नास्ति की है, यह अनेकान्त किया। कितना स्पष्ट किया है! अपना भगवान अनन्त-अनन्त सामान्य शक्तिस्वभावस्वरूप भगवान आत्मतत्त्व के आश्रय से, उसके अवलम्बन से, उसके सन्मुख से जो दृष्टि-ज्ञान और लीनता होती है, वह एक ही मोक्षमार्ग जैनदर्शन में प्रसिद्ध है। **इस मार्ग बिना मोक्ष नहीं है।** व्यवहार बीच में उत्पन्न होता है। जब तक वीतराग न हो, तब तक व्यवहार बीच में आता है परन्तु वह मोक्षमार्ग नहीं है।

मुमुक्षु: मार्ग पर्याय में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्षमार्ग का अर्थ ज्ञान, उपचार, कथन।

इस मार्ग बिना मोक्ष नहीं है। तीन काल तीन लोक में (मोक्ष नहीं है)। समझ में आया? कहो, भीखाभाई! भारी सूक्ष्म, हों! सत्य बात है। **(मोक्ष का) प्रसिद्ध मार्ग है;...** वैसे तो शब्द कहा है। आहा..हा..! बापू! अनन्त काल से प्रभु! ऐसा प्रसिद्ध मार्ग इन्द्रों, गणधरों के बीच भगवान फरमाते थे। आहा..हा..! समझ में आया? अर्धलोक के दक्षिण

के स्वामी शकेन्द्र, उत्तर के अर्धलोक के स्वामी ईशान इन्द्र, ऐसे सौ-सौ इन्द्रों के बीच, गणधरों-सन्तों के प्रमुख ऐसे सन्त गणधर के बीच भगवान ऐसा कहते थे। समझ में आया? यह बात कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं, वही बात पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं (कि) हम तो कुछ कहते नहीं। यह तो परम्परा गणधरों से चली आयी है, वह बात हम कहते हैं। समझ में आया? गजब मार्ग, भाई!

इस मार्ग बिना मोक्ष नहीं है। है अन्दर? देखो! **'रेतेन मार्गेण विना न मोक्षः'** संस्कृत में है। व्यवहार से मोक्षमार्ग नहीं है। आहा..हा..! निमित्त के अवलम्बन से विकल्प उत्पन्न होता है, उससे मोक्षमार्ग नहीं। अपने निज स्वभाव के अवलम्बन से निर्विकल्प वीतरागी पर्याय उत्पन्न हो, वह मोक्षमार्ग एक ही है। आहा..हा..! समझ में आया? यह १३ गाथा। मूल तो उसमें कारण कहना था न! उस कारण को यहाँ चैतन्य सामान्य कहा। कारणदृष्टि, कारणदर्शनोपयोग। यह तेरहवीं गाथा में है न?

मुमुक्षु : त्रिकाली द्रव्य को ही मोक्षमार्ग कह दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मार्ग ही वह है। उसका आश्रय करने का अर्थ कि वह ही मोक्षमार्ग है। आहा..हा..! जगत को सत्य बात सुनना कठिन पड़ गयी है, दुर्लभ हो गयी है और समझना तथा अन्तर में रुचि करना, परिणमन (होना), वह तो अलौकिक बात हो गयी।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं, भगवान! देखो! आत्मा को भगवानरूप से ही सम्बोधन करते हैं। तेरा सामान्य त्रिकाली स्वभाव, पर्याय-विशेष अवस्थारहित, वर्तमान अवस्था जो दशा विशेष है, उससे रहित। त्रिकाल ज्ञायक ध्रुवस्वभावभाव चैतन्य सामान्य दर्शनोपयोग इत्यादि-इत्यादि ऐसे सामान्य स्वभावरूप आत्मतत्त्व, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। तीन बातें ली हैं। त्रिकाल सामान्य स्वभाव, वह शक्ति; ऐसा आत्मतत्त्व शक्तिवान और उसके आश्रय से मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, वह पर्याय है। द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों आ गये। यह और क्या कहा?

फिर से, देखो! **एक ही चैतन्यसामान्यरूप...** एक ही निज आत्मतत्त्व, ऐसा। कैसा है? कि चैतन्यसामान्यरूप। यह तो अध्यात्म की बात है, गम्भीर बात है। भगवान आत्मा वह तो वस्तु / द्रव्य / तत्त्व हुआ, परन्तु उसका सामान्य दर्शनोपयोग, त्रिकाली कारण उपयोग, त्रिकाली स्वभाव सामान्य उपयोग, वह गुण हुआ और उस गुण का धारक तत्त्व,

वही मोक्षमार्ग। इसका अर्थ यह कि उस तत्त्व में अन्तर्मुख होकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागी पर्याय उत्पन्न हो, वह मोक्षमार्ग है, तो द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों आ गये। सेठी! समझ में आया? द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है? भगवान जाने। हो गया। अपने तो करो न धर्म! परन्तु कहाँ से? धूल में धर्म होगा? चीज़ क्या है, यह समझे बिना धर्म कहाँ से उत्पन्न होता है और उत्पन्न होनेवाले की शक्ति कितनी सामर्थ्यशाली है, इसकी खबर बिना धर्म कहाँ से होगा? भगवान आत्मा... आहा..हा..! गजब परन्तु... ऐसी तो टीका करते हैं और कहते हैं कि हमें मान्य नहीं है। इसे उड़ाते हैं। दर्शनोपयोग की बात थी न इसमें? भाई! कारणदर्शनोपयोग। आहा..हा..!

मुमुक्षु : उसमें से स्वरूपश्रद्धा निकली, उसमें से मोक्षमार्ग निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब। कारणदर्शनोपयोग त्रिकाली, कारण त्रिकाली श्रद्धा, स्वरूपश्रद्धा त्रिकाली, वह सब सामान्य। वह चैतन्य सामान्य, एकरूप सामान्य ऐसा जो आत्मतत्त्व, वह आत्मतत्त्व ही मोक्षमार्ग। अर्थात्? उस मोक्षमार्ग की, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय का आधार आत्मा है; पर है नहीं। व्यवहारमोक्षमार्ग जो कहा गया है, वह तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिये कहा है। वस्तु वह नहीं है। वस्तु यह एक ही मोक्षमार्ग है।

वह (मोक्ष का) प्रसिद्ध मार्ग है;... ऐसा कहा न? '**मुक्तिस्पृहाणामयनं तदुच्चै-**' मोक्ष का मार्ग। '**णामयनं**' अर्थात् मार्ग कहा। '**तदुच्चै-**' अर्थात् प्रसिद्ध है। जैनमार्ग में, वीतरागमार्ग में अनादि से केवली होते आये हैं। संसार-जगत अनादि है। केवली भी अनादि से साथ ही है। इस जगत में कभी भी केवली नहीं थे, ऐसा कभी नहीं बनता। अनादि से केवली हैं, अनादि से सिद्ध हैं, अनादि से मोक्षमार्ग है, अनादि से मिथ्यामार्ग भी है। समझ में आया? अनादि से केवली भगवान ऐसा कहते आये हैं। प्रसिद्ध मार्ग है, ऐसा कहते हैं। ओहो..हो..! अन्दर भगवान अन्तरस्वभाव का माल लेकर पड़ा है। ऐसे सामान्य स्वभावरूप आत्मतत्त्व, वही मोक्षमार्ग। अर्थात्? उस तत्त्व की अन्तर्मुख होकर शक्ति में से जो व्यक्तता सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वीतरागी निर्दोष आनन्दरूपी दशा प्रगट हुई, वही एक मोक्षमार्ग है, अन्य कोई मोक्षमार्ग नहीं। कहो, समझ में आया? यह १३वीं गाथा हुई। १४वीं (गाथा)।

गाथा-१४

चक्खु अचक्खू ओही तिण्णि वि भणिदं विहावदिट्ठि त्ति।
पज्जाओ दु-वियप्पो सपरावेक्खो य णिरवेक्खो ।।१४।।

चक्षुरचक्षुरवधयस्तिस्रोऽपि भणिता विभावदृष्टय इति।
पर्यायो द्वि-विकल्पः स्वपरापेक्षश्च निरपेक्षः ।।१४।।

अशुद्धदृष्टिशुद्धाशुद्धपर्यायसूचनेयम्। मतिज्ञानावरणीयकर्मक्षयोपशमेन यथा मूर्तं वस्तु जानाति तथा चक्षुर्दर्शनावरणीयकर्मक्षयोपशमेन मूर्तं वस्तु पश्यति च। यथा श्रुतज्ञानावरणीय-कर्मक्षयोपशमेन श्रुतद्वारेण द्रव्यश्रुतनिगदितमूर्तामूर्तसमस्तं वस्तुजातं परोक्षवृत्त्या जानाति तथैवाचक्षुर्दर्शनावरणीयकर्मक्षयोपशमेन स्पर्शनरसनघ्राणश्रोत्रद्वारेण तत्तद्योग्यविषयान् पश्यति च। यथा अवधिज्ञानावरणीयकर्मक्षयोपशमेन शुद्धपुद्गलपर्यन्तं मूर्तद्रव्यं जानाति तथा अवधिदर्शनावरणीयकर्मक्षयोपशमेन समस्तमूर्तपदार्थं पश्यति च।

अत्रोपयोगव्याख्यानानन्तरं पर्यायस्वरूपमुच्यते। परि समन्तात् भेदमेति गच्छतीति पर्यायः। अत्र स्वभावपर्यायः षड्द्रव्यसाधारणः अर्थपर्यायः अवाङ्मनसगोचरः अतिसूक्ष्मः आगमप्रामाण्यादभ्युपगम्योऽपि च षट्स्थानिवृद्धिविकल्पयुतः। अनन्तभागवृद्धिः असङ्ख्यात-भागवृद्धिः सङ्ख्यातभागवृद्धिः सङ्ख्यातगुणवृद्धिः असङ्ख्यातगुणवृद्धिः अनन्तगुणवृद्धिः, तथा हानिश्च नीयते। अशुद्धपर्यायो नरनारकादिव्यञ्जनपर्याय इति।

चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन, ये विभाविक दर्श हैं।
निरपेक्ष, स्वपरापेक्ष - ये पर्याय द्विविध विकल्प हैं॥१४॥

अन्वयार्थ :—[चक्षुरचक्षुरवधयः] चक्षु, अचक्षु और अवधि [तिस्रः अपि] यह तीनों [विभावदृष्टयः] विभावदर्शन [इति भणिताः] कहे गये हैं। [पर्य्यायः द्विविकल्पः] पर्याय द्विविध है— [स्वपरापेक्षः] स्वपरापेक्ष (स्व और पर की अपेक्षा युक्त) [च] और [निरपेक्षः] निरपेक्ष।

टीका :— यह अशुद्धदर्शन की तथा शुद्ध और अशुद्धपर्याय की सूचना है।

जिस प्रकार मतिज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव) मूर्तवस्तु को जानता है; उसी प्रकार चक्षुदर्शनावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव) मूर्तवस्तु को देखता * है। जिस प्रकार श्रुतज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव), श्रुत द्वारा द्रव्यश्रुत से कहे हुए मूर्त-अमूर्त समस्त वस्तुसमूह को परोक्षरीति से जानता है; उसी प्रकार अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से (जीव), स्पर्शन, रसन, घ्राण और श्रोत्र द्वारा, उस-उसके योग्य विषयों को देखता है। जिस प्रकार अवधिज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव), शुद्धपुद्गलपर्यन्त (परमाणु तक के) मूर्तद्रव्य को जानता है; उसी प्रकार अवधिदर्शनावरणीय -कर्म के क्षयोपशम से (जीव), समस्त मूर्तपदार्थों को देखता है।

(उपरोक्तानुसार) उपयोग का व्याख्यान करने के पश्चात्, यहाँ पर्याय का स्वरूप कहा जाता है —

परि समन्तात् भेदमेति गच्छतीति पर्यायः, अर्थात् जो सर्व ओर से भेद को प्राप्त करे, सो पर्याय है।

उसमें, स्वभावपर्याय, छह द्रव्यों को साधारण है, अर्थपर्याय है, वाणी और मन को अगोचर है, अति सूक्ष्म है, आगमप्रमाण से स्वीकार करनेयोग्य तथा छह हानि-वृद्धि के भेदोंसहित है, अर्थात् अनन्त भागवृद्धि, असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असंख्यात गुणवृद्धि और अनन्त गुणवृद्धि सहित होती है और इसी प्रकार (वृद्धि की भाँति) हानि भी लगायी जाती है।

अशुद्धपर्याय, नर-नारकादि व्यंजनपर्याय हैं।

गाथा-१४ पर प्रवचन

चक्खु अचक्खू ओही तिण्णि वि भणिदं विहावदिट्ठि त्ति।
पज्जाओ दु-वियप्पो सपरावेक्खो य णिरवेक्खो।।१४।।

** देखना=सामान्यरूप से अवलोकन करना; सामान्य प्रतिभास होना।*

नीचे हरिगीत

चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन, ये विभाविक दर्श हैं।
निरपेक्ष, स्वपरापेक्ष - ये पर्याय द्विविध विकल्प हैं॥१४॥

उस तेरहवीं गाथा में कारणदर्शनोपयोग और कार्यदर्शनोपयोग की व्याख्या हो गयी। कारणस्वभावदर्शनोपयोग और कार्यस्वभावदर्शनोपयोग। शान्तिभाई! १३वीं गाथा में। भगवान आत्मा में त्रिकाली दर्शनोपयोग शक्ति है, उस कारणदर्शनोपयोग की व्याख्या हुई, जो त्रिकाल है; और उसमें से व्यक्त कार्य केवलदर्शन प्रगट होता है, वह कार्यस्वभावदर्शनोपयोग स्वभावदर्शनोपयोग कहा गया है। अब, विभावदर्शनोपयोग की व्याख्या करते हैं।

यह अशुद्धदर्शन की... अशुद्ध दर्शन, देखो! विभाव कहो या अशुद्ध (कहो) **तथा शुद्ध और अशुद्धपर्याय की...** भाषा ऐसी ली है। अशुद्धदर्शन कहो या विभावदर्शन। विभावदर्शन कहा था न? उसे यहाँ अशुद्धदर्शन की व्याख्या कहा है और **शुद्ध और अशुद्धपर्याय की सूचना है।** अवस्था। शुद्धदशा और अशुद्धदशा। दशा अर्थात् पर्याय।

जिस प्रकार मतिज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव) मूर्तवस्तु को जानता है;... अपने पुरुषार्थ के कारण मतिज्ञानावरणीयकर्म का क्षयोपशम हुआ, तो अपनी ज्ञान की पर्याय में विकास-क्षयोपशमरूप ज्ञान की दशा उत्पन्न हुई। उस दशा से मूर्त वस्तु को आत्मा जानता है। मतिज्ञान का न्याय दिया।

उसी प्रकार चक्षुदर्शनावरणीयकर्म के क्षयोपशम से... चक्षु तो निमित्त है। उससे कुछ जानता या देखता नहीं है, परन्तु जानने के पहले देखने का उपयोग अन्दर में होता है, उस **चक्षुदर्शनावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव) मूर्तवस्तु को देखता है।** देखने का अर्थ कि ***सामान्यरूप से अवलोकन करना;...*** नीचे नोट है। ***सामान्य प्रतिभास होना।*** यह सूक्ष्म बात है। जानने का व्यवहार होने से पहले एक अन्तर्मुख अन्तर का व्यापार होना, उसका नाम सामान्यदर्शनोपयोग कहते हैं, देखना कहते हैं। गजब, भाई! जैसे मतिज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से-विकास से मूर्त वस्तु को जानता है, वैसे **चक्षुदर्शनावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव) मूर्तवस्तु को देखता है।** ऐसा कहते हैं। जानता है, उसके पहले देखता है। यह तो पहली छद्मस्थ की बात है न!

जिस प्रकार श्रुतज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव), श्रुत द्वारा द्रव्यश्रुत

से कहे हुए... कैसा आया देखा ? उसमें इतना नहीं कहा। मात्र क्षयोपशम से मूर्त वस्तु को जानता है। इसमें आत्मा में स्वभाव के आश्रय से जो भावश्रुतज्ञान उत्पन्न होता है, उस **श्रुत द्वारा द्रव्यश्रुत से कहे हुए...** शास्त्र के शब्दों में, द्रव्यश्रुत में भगवान ने जो कहा है, **मूर्त-अमूर्त समस्त वस्तुसमूह को परोक्षरीति से जानता है;...** श्रुतज्ञान से जानता है - ऐसा कहते हैं। यहाँ पर को जानने की बात है। स्व को जानने की बात नहीं है। **श्रुत द्वारा द्रव्यश्रुत से कहे हुए मूर्त-अमूर्त समस्त वस्तुसमूह को परोक्षरीति से जानता है;...** देखो! श्रुतज्ञान में-अपनी पर्याय में, भगवान ने द्रव्यश्रुत में समस्त वस्तु कही, उसे परोक्षरीति से जानता है। परोक्ष कहा। द्रव्यश्रुत द्वारा कहे हुए समस्त वस्तु को-मूर्त-अमूर्त को भावश्रुतज्ञान अपनी पर्याय में जानता है। उसे भावश्रुत कहा जाता है।

उसी प्रकार अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से (जीव), स्पर्शन, रसन, घ्राण और श्रोत्र द्वारा, उस-उसके योग्य विषयों को देखता है। देखने का अर्थ (यह है कि) सामान्यरूप से अवलोकन करना। **जिस प्रकार अवधिज्ञानावरणीयकर्म के क्षयोपशम से (जीव), शुद्धपुद्गलपर्यन्त (परमाणु तक के) मूर्तद्रव्य को जानता है; उसी प्रकार अवधिदर्शनावरणीय -कर्म के क्षयोपशम से (जीव), समस्त मूर्तपदार्थों को देखता है।** लो! जानना-देखना दोनों साथ लेना है।

(उपरोक्तानुसार) उपयोग का व्याख्यान करने के पश्चात्, यहाँ पर्याय का स्वरूप कहा जाता है- व्याख्या बहुत लम्बी। पहले तो यह कहा कि आत्मा का ज्ञानोपयोग दो प्रकार का है। एक त्रिकाल ज्ञानोपयोग और (एक) वर्तमान कार्य ज्ञानस्वभाव-उपयोग। ज्ञानोपयोग के दो प्रकार : एक कारणस्वभाव-उपयोग... समझ में आया ? और एक ज्ञानोपयोग के स्वभाव की बात हुई। विभाव में चार ज्ञान। चार ज्ञान विभाव है न! परन्तु होते हैं चैतन्य-अनुविधाय से, स्वयं से। देखो! यहाँ डाला है कि कर्म के क्षयोपशम में, हों! परन्तु पहले स्पष्टीकरण दे दिया है। समझ में आया ? इसी प्रकार दर्शनोपयोग के दो भेद— कारणदर्शनोपयोग त्रिकाली और कार्यदर्शनोपयोग; और विभावदर्शनोपयोग के तीन प्रकार। उस विभावज्ञान के चार प्रकार थे - मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय। दर्शन में तीन है - चक्षु, अचक्षु और अवधि। उनकी व्याख्या हुई। अब पर्याय की व्याख्या करते हैं। उपयोग की व्याख्या हुई। है तो उपयोग—कार्य-उपयोग वह भी पर्याय, परन्तु यहाँ भिन्न पर्याय की बात अब करनी है। क्या कहा ? नहीं तो आत्मा वस्तु त्रिकाली है; ज्ञान-दर्शन कारणज्ञान

(कारणदर्शन)वे तो ध्रुव हैं, परन्तु स्वभावकार्यज्ञान, स्वभावकार्यदर्शन, विभाव चार ज्ञान और विभाव तीन दर्शन है तो पर्याय, परन्तु यहाँ तो दूसरी प्रकार की पर्याय अब कहनी है। वजुभाई! यह कार्यपर्याय, पर्याय नहीं?

मुमुक्षु : अशुद्धदर्शन स्वयं ही पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है, परन्तु यह दूसरी प्रकार की पर्याय वर्णन करनी है। पर्याय का भेद अब कहा जाएगा। आहा..हा..!

यहाँ पर्याय का स्वरूप कहा जाता है—परि समन्तात् भेदमेति गच्छतीति पर्यायः, अर्थात् जो सर्व ओर से भेद को प्राप्त करे, सो पर्याय है। वस्तु, आत्मा और उसकी शक्तियाँ, उनमें पर्याय अंशरूप से भेद पड़े, उसे पर्याय कहा जाता है। समझ में आया? वस्तु आत्मा; उसके ज्ञान-दर्शन आदि त्रिकाली गुण; उनकी एक समय की अवस्था भेदरूप पर्याय। गुण और द्रव्य त्रिकाली, वे तो अभेद हुए। उनकी एक समय की पर्याय अवस्था भेदरूप, उसे पर्याय कहा जाता है।

उसमें, स्वभावपर्याय, छह द्रव्यों को साधारण है,... स्वभावपर्याय। छह द्रव्य हैं न? भगवान ने देखे हैं। भगवान ने केवलज्ञान में जाति से छह द्रव्य देखे हैं। संख्या (अपेक्षा) अनन्त। अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, कालाणु असंख्य, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश (एक-एक)—ऐसे छह द्रव्य केवली भगवान ने देखे हैं। तीर्थंकर भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। सम्प्रदाय में बात कैसी घट गयी। क्रियाकाण्ड में घुस गये। तत्त्व की दृष्टि दूर पड़ी रही। तत्त्व की समझ करना क्या चीज़ है? (यह रहा नहीं)। सेठी! लो! इसमें क्या समझ में आया? मामूली-सा लगता है। क्या कहते हैं यह?

स्वभावपर्याय, छह द्रव्यों को साधारण है,... भगवान ने छह द्रव्य कहे, उनमें स्वभावपर्याय छहों द्रव्यों को (साधारण है)। वह स्वभावपर्याय **अर्थपर्याय है,...** वह स्वभावपर्याय, अर्थपर्याय है। वरना तो केवलज्ञान, केवलदर्शन, वह स्वभावपर्याय है। कार्य नहीं, कार्यरूप से ही लिया, यहाँ पर्यायरूप से दूसरी बात ली। **वाणी और मन को अगोचर है,...** वह स्वभावपर्याय अर्थपर्याय वाणी और मन से अगम्य है। **अति सूक्ष्म है, आगमप्रमाण से स्वीकार करनेयोग्य...** है। भगवान की वाणी से स्वीकार करनेयोग्य है।

छह हानि-वृद्धि के भेदोंसहित है, अर्थात् अनन्त भागवृद्धि,... थोड़ी सूक्ष्म बात

है। **असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, असंख्यात गुणवृद्धि और अनन्त गुणवृद्धि सहित होती है और इसी प्रकार (वृद्धि की भाँति) हानि भी लगायी जाती है।** एक समय में अनन्तगुनी वृद्धि होती है। असंख्यगुनी और संख्यगुनी। एक समय में अनन्तगुण हानि, असंख्यगुण हानि और संख्यगुण हानि होती है। ऐसे छह द्रव्यों में एक समय में अनन्त षट् प्रकाररूप से परिणमना, ऐसी कोई स्वभावपर्याय भगवान ने देखी है। समझ में आया ?

अशुद्धपर्याय, नर-नारकादि व्यंजनपर्याय हैं। लो! यह एक शुद्धपर्याय में यहाँ डाला यह। (गाथा) १५ में शुद्धपर्याय दूसरे प्रकार से है। अशुद्धपर्याय चार गति है— मनुष्य, नारकी, देव, पशु। उसकी अन्दर व्यंजनपर्याय, हों! विभाव। शरीर नहीं।

श्लोक-२४

[अब, १४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, तीन श्लोक कहते हैं—]

(मालिनी)

अथ सति परभावे शुद्ध-मात्मान-मेकं,
सहज-गुणमणीना-माकरं पूर्ण-बोधम्।
भजति निशितबुद्धिर्यः पुमान् शुद्धदृष्टिः,
स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः ।।२४।।

(हरिगीतिका)

परभाव होते हुए भी जो सहज गुण-मणि खान है।
जो पूर्ण ज्ञान स्वरूप निज शुद्धात्म तत्त्व महान है॥
उस एक को जो तीक्ष्णबुद्धि शुद्धदृष्टि नर भजे।
परमश्रीमय कामिनी का वह पुरुष वल्लभ बने॥२४॥

***श्लोकार्थ :*—परभाव होने पर भी, सहजगुणमणि की खानरूप तथा पूर्ण ज्ञानवाले शुद्ध आत्मा को, एक को जो तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है, वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का (मुक्तिसुन्दरी का) वल्लभ बनता है॥२४॥**

श्लोक-२४ पर प्रवचन

[अब, १४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज, तीन श्लोक कहते हैं—]

अथ सति परभावे शुद्ध-मात्मान-मेकं,
सहज-गुणमणीना-माकरं पूर्ण-बोधम्।
भजति निशितबुद्धिर्यः पुमान् शुद्धदृष्टिः,
स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः ।।२४।।

भगवान पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं। परमेष्ठी हैं न! **परभाव होने पर भी,...** क्या कहते हैं? अरे! आत्मा की वर्तमान दशा में **परभाव होने पर भी,...** परभाव अर्थात् विभावपर्याय। रागादि की तो यहाँ बात नहीं, यहाँ तो ज्ञानदर्शन की अपेक्षा से तो परभाव। वे चार ज्ञान, तीन दर्शन, वे सब परभाव - विभावभाव हैं। यद्यपि यहाँ तो केवलज्ञान को परभाव कह दिया है, परन्तु यहाँ साधक को तो वह है नहीं, इसलिए वह बात नहीं है। क्या कहते हैं? आत्मा, उसकी वर्तमान दशा में चार ज्ञान विभाव और तीन दर्शन विभाव होने पर भी, राग-द्वेष होना, वह तो ठीक, क्योंकि वह तो विभाव है।

ऐसा होने पर भी भगवान आत्मा अन्दर कैसा है? **सहजगुणमणि की खानरूप...** है। स्वाभाविक सहजगुणमणि की खान। आहा..हा..! **सहजगुणमणि की खानरूप...** आत्मा है। अनन्त-अनन्त ज्ञान, आनन्द उसमें से निकालो तो भी उसमें से कम न हो, ऐसी भगवान आत्मा में शक्ति पड़ी है। ऐसे आत्मा का माहात्म्य इसे नहीं आता और बाहर का आता है। विकल्प का, निमित्त का और एक समय की पर्याय का माहात्म्य आता है। कहते हैं कि ऐसा होने पर भी हम तो सहजगुणमणि... भगवान आत्मा में स्वाभाविक गुण की मणि पड़ी है। आहा..हा..! अनन्त ज्ञान स्वाभाविक गुणमणिरत्न की खान (भरी है)।

तथा पूर्ण ज्ञानवाले शुद्ध आत्मा को,... पूर्ण ज्ञानवाले शुद्ध आत्मा को। अन्तर ज्ञानस्वभाव.. स्वभाव.. वस्तु में ज्ञानस्वभाव पूर्ण भरा है, द्रव्यस्वभाव पूर्ण है। ऐसे **पूर्ण ज्ञानवाले शुद्ध आत्मा को, एक को... एक को जो तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है,...** ऐसे शुद्धात्मा को एक को ही। एक को तीक्ष्णबुद्धिवाला, जिसकी ज्ञानबुद्धि

उग्र होकर द्रव्यस्वभाव में घुसी है। आहा..हा..! त्रिकाल ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, स्वभावभाव, गुणमणि की खान, ऐसे एक को जो तीक्ष्णबुद्धिवाला (भजता है)। लो, उसे तीक्ष्णबुद्धिवाला कहा। जिसके ज्ञान की वर्तमान दशा **एक को जो तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है,...** आहा..हा..! देखो, **तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है,...** आत्मा का भजन। अनन्त ज्ञानमणि की खान भगवान और ज्ञान से परिपूर्ण प्रभु, उसे दृष्टि को तीक्ष्ण करके, पकड़कर, ऐसे द्रव्यस्वभाव को पकड़कर उसका भजन करता है अर्थात् उसमें एकाग्रता होती है, उसे शुद्धदृष्टि तीक्ष्णबुद्धिवाला पुरुष कहा जाता है। दूसरा क्षयोपशमज्ञान कम हो तो उसके साथ सम्बन्ध नहीं है, ऐसा कहते हैं। सहजगुणमणि खान प्रभु को जिस बुद्धि से पकड़ लिया, बस! वह मोक्ष का मार्ग है। आहा..हा..! यह क्या कहते हैं? अनजाने व्यक्ति को तो अटपटा जैसा लगता है। मार्ग ऐसा है, भगवान! तुझे खबर नहीं। सर्वज्ञ स्वभावी प्रभु, सर्वज्ञ अर्थात् पूर्ण ज्ञान कहा न यहाँ? पूर्ण ज्ञानस्वभाव। पूर्ण ज्ञानस्वभाव ऐसा शुद्ध, शुद्ध आत्मा एक ही, सामान्य-विशेष ले लिये। सामान्य का धारक। शुद्धात्मा एक को ही; दूसरे को नहीं, पर्याय को नहीं, व्यवहार को नहीं, निमित्त को नहीं।

तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि... तीक्ष्णबुद्धि और शुद्धदृष्टि। तीक्ष्णबुद्धिवाला, अन्दर ज्ञान की वर्तमान ज्ञानकला को अन्तर में झुकाकर शुद्धदृष्टिवन्त पुरुष भजता है। ध्रुवस्वभाव की एकाग्रता करता है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! वह शुद्ध गुणमणि की खान। वह गुण की खान आत्मा हुआ न, और पूर्ण ज्ञानवाला शुद्धात्मा, गुणवाला आत्मा। **एक को जो तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है,...** उसे शुद्धदृष्टि कहते हैं। द्रव्यस्वभाव में एकाग्र हो, वह शुद्धदृष्टि। पण्डितजी! यह नियमसार कभी देखा है या नहीं?

मुमुक्षु : ऐसा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम तो संस्कृत के प्रोफेसर हो। जयपुर में संस्कृत के प्रोफेसर हो। संस्कृत के प्रोफेसर इसमें क्या काम करे? आहा..हा..! देखो तो सही, मुनि ने कैसा श्लोक रखा है।

ऐसा जो भगवान अन्तर में, जिसमें से अनन्त केवलज्ञान, केवलदर्शन, आनन्ददशारूपी पर्याय प्रगट होती है, ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय प्रगट हो तो भी कमी न हो, ऐसी खान आत्मा है। आहा..हा..! ऐसे भगवान आत्मा को एक को ही; दूसरे को नहीं।

भगवान को भी नहीं, ऐसा कहते हैं। भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... वह नहीं। तेरा भगवान यह।

एक को जो तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है,... वह मोक्ष का मार्ग। शुद्ध ध्रुवस्वभाव, ज्ञानस्वभाव, सहजमणिरत्न की खान—ऐसा तत्त्व, उसके सन्मुख होकर एकाग्र होता है, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। **वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का (मुक्तिसुन्दरी का) वल्लभ बनता है।** उसे मुक्ति प्राप्त होती है। आहा..हा..! **परमश्रीरूपी कामिनी...** अर्थात् मुक्ति। आहा..हा..! मुक्तदशा, सिद्धदशा। मार्ग और मार्ग का फल दोनों का वर्णन कर दिया। आहा..हा..! बात बहुत थोड़ी है, परन्तु है बड़ी गम्भीर।

भगवान आत्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा परिपूर्ण गुणवन्त, परिपूर्ण गुणवन्त। सहजमणि की खान कहा न! और पूर्ण ज्ञानवन्त सर्वज्ञस्वभावी, उसे एक को ही भजता है। बस, एक को ही भजता है। ऐसे स्वभाव को, द्रव्यस्वभाव को एक को ही भजता है। उसमें ही श्रद्धा-ज्ञान और लीनता करता है, वह अल्पकाल में पूर्ण लक्ष्मी ऐसी जो मुक्तिसुन्दरी, उसका बल्लभ अर्थात् प्रिय होता है अर्थात् उस पर्याय को प्राप्त होता है। आहा..हा..!

वह पुरुष (मुक्तिसुन्दरीरूपी) कामिनी का... जिसके पास सिद्धपद में अनन्त आनन्द आदि पड़े हैं। मुक्ति में अनन्त आनन्द, अनन्त पूर्ण कार्यदशा, उसका बल्लभ बनता है अर्थात् वह पर्याय उसे छोड़ती नहीं। उस पर्याय को प्राप्त करता है। देखो! मोक्ष का मार्ग और मोक्ष दोनों का वर्णन एक श्लोक में कह दिया। गागर में सागर भर दी है, लो! यह २४वाँ कलश हुआ।

मुमुक्षु : मार्ग की बात की।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मार्ग कहा न! जो आत्मा अपने स्वाभाविक गुणमणि, स्वाभाविक अर्थात् परमस्वभावरूप पड़े हुए ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि अनन्त गुणमणि और उसमें एक सर्वज्ञपना विशेष लिया और पूर्ण ज्ञानमय भगवान आत्मा ध्रुव, उस एक को ही भजता है। बस, दूसरे किसी का काम नहीं। परमेश्वर तो भगवान परमेश्वर का परमेश्वरपना उनके पास रहा। भगवान परमेश्वर को भजने जायेगा तो राग उत्पन्न होगा। कहो, समझ में आया? णमो अरिहन्ताणं... णमो... ऐई! पण्डितजी! परमेश्वर को भजने जायेगा तो विकल्प उत्पन्न होगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, बात यही है। वीतराग का स्वरूप ही यह मार्ग है। निज परमात्मा। आहा..हा..! अपना निजस्वभावरूप परमात्मा। अपना निजस्वरूप। पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द आदि शक्ति से भरपूर है। गुणमणि, मणि लिखा है, देखो न! गुणमणि। जैसे स्वयंभूरमणसमुद्र मात्र मणिरत्न की रेत से भरा हुआ है; वैसे भगवान आत्मा महास्वयंभू, और स्वयंभू आया। वह अनुत्पन्न का आया। **निजोगम** आत्मा स्वयं से है। दूसरे किसी से कभी उत्पन्न नहीं हुआ। अनादि है। उसका कोई कर्ता-हर्ता नहीं है। स्वयंसिद्ध भगवान आत्मा अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है। आहा..हा..! नित्यानन्दस्वभाव पर दृष्टि रखकर एकाग्र होता है, वह मुक्ति का बल्लभ होता है। आहा..हा..! स्वयंवर। उसे मुक्ति कन्या मिलती है, शिवरमणी। यह मार्ग और मार्ग का फल दोनों बतायें हैं। परन्तु यह तो निश्चय... निश्चय... निश्चय... परन्तु बीच में व्यवहार (आवे उसका क्या?) भाई! व्यवहार हो तो विकल्प है, वह कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है। इसीलिए तो यहाँ जोर दिया है।

ऐसे शुद्धात्मा को—**एक को जो तीक्ष्णबुद्धिवाला शुद्धदृष्टि पुरुष भजता है,...** उसे मुक्ति प्राप्त होती है। आहा..हा..! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस भाव का भी भजन नहीं करना, ऐसा कहते हैं। वह तो राग है।

मुमुक्षु : तीर्थंकर भगवान की तो बहुत महिमा और पूजा (आती है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भाव हो, तब ऐसी बात आवे न! विकल्प आता है, तब भगवान ऐसे हैं, परन्तु वह सब विकल्प का कारण है। शुभभाव में निमित्त है। भगवान के दर्शन इत्यादि शुभभाव का निमित्त है। शुद्ध का नहीं। आहा..हा..! वीतरागमार्ग में ऐसा कहते हैं। दूसरे तो कहते हैं हमें दो, हमें आहार-पानी दो, हमारी सेवा करो, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। यहाँ कहते हैं कि हमारी सेवा करने से तुझे विकल्प उत्पन्न होगा।

मुमुक्षु : तेरा कल्याण रुक जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : तेरे निजानन्द भगवान को भज, तेरी मुक्ति हो जायेगी। यह कहनेवाले एक वीतरागी सन्त ही हैं। आहा..हा..! तुझमें क्या कमी है कि तू पर को भजने जाता है। तुझमें क्या अपूर्णता है कि पूर्ण होने के लिये पर का आश्रय लेने जाता है? ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! प्रकाशदासजी! यह भगवान साक्षात् परमात्मा को भजे तो विकल्प होता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : मुनि को आहार दे तो संवर-निर्जरा होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी संवर-निर्जरा नहीं होती। तीर्थंकर जैसे छद्मस्थ को आहार-पानी दे तो वह पुण्यबंध है। केवली को तो आहार-पानी होते ही नहीं। तीर्थंकर जब छद्मस्थ होते हैं, तब आहार लेने जाते हैं। उन्हें निहार नहीं परन्तु आहार है, आहार है तो आहार देनेवाले को तो पुण्यभाव होता है; संवर-निर्जरा बिल्कुल नहीं। कहो, समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! संवर-निर्जरा अर्थात् धर्म तो स्वद्रव्य के आश्रय से ही होता है - ऐसा अनादि प्रसिद्ध मार्ग वीतराग में है, दूसरे में तो यह मार्ग है ही नहीं। अन्यत्र कहीं यह मार्ग है ही नहीं। आहा..हा..! सत्य बात समझना, सुनने मिलना महाकठिन है। बाकी तो गप्प चलती है। आहा..हा..! सच्ची बात तो मिथ्या गिनाते हैं, एकान्त है, एकान्त है - (ऐसा कहते हैं)। एकान्त ही कहते हैं, देखो! **एक को ही...** उसमें दूसरा नहीं। यहाँ तो एकान्त कहते हैं।

मुमुक्षु : अनेकान्त नहीं कहा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए कहा न, ऊपर कहा। आहा..हा..!

श्लोक-२५

(मालिनी)

इति पर-गुण-पर्यायेषु सत्सूत्तमानां,
हृदय-सरसि-जाते राजते कारणात्मा।
सपदि समयसारं तं परं ब्रह्म-रूपं,
भज भजसि निजोत्थं भव्यशार्दूल स त्वम्।।२५।।

(हरिगीतिका)

पर-गुण तथा पर्याय है, पर जो पुरुष उत्तम अहा।
उनके हृदय पंकज विराजित एक कारण आत्मा॥

निज से हुआ उत्पन्न परम-ब्रह्म वह शुद्धात्मा।
तुम भज रहे, जल्दी भजो, हो वह तुम्हीं भव्यात्मा॥२५॥

***श्लोकार्थ :*—इस प्रकार पर गुण-पर्यायें होने पर भी, उत्तम पुरुषों के हृदयकमल में कारणआत्मा विराजमान है। अपने से उत्पन्न ऐसे उस परमब्रह्मरूप समयसार को कि जिसे तू भज रहा है, उसे हे भव्यशार्दूल (भव्योक्तम)! तू शीघ्र भज; तू वह है॥२५॥**

श्लोक-२५ पर प्रवचन

कलश - २५

इति पर-गुण-पर्यायेषु सत्सूत्तमानां,
हृदय-सरसि-जाते राजते कारणात्मा।
सपदि समयसारं तं परं ब्रह्म-रूपं,
भज भजसि निजोत्थं भव्यशार्दूल स त्वम्॥२५॥

'**स त्वम्**' '**सत्वम्**' पूरा नहीं। '**स**' उसे '**त्वम्**' तू भज। उसे भज। वह भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु है, उसे भज। भाई! भक्ति-वक्ति तो भगवान की होती है। तू भगवान नहीं? सत्समागम से सब मिलता है। तो तू सत् नहीं? सोगानी ने एक जगह ऐसा कहा है, भाई! हमारे सत्समागम हो तो सत् का लाभ हो। बराबर है। तू सत् है या नहीं? या तू असत् है? भगवान! तू सत् है या नहीं? और सत्य है या नहीं? सत्यसाहिब त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु, सत्यसाहिब तू है। तेरी अपेक्षा से पूरी दुनिया असत् है। समझ में आया?

इस प्रकार पर गुण-पर्यायें होने पर भी,... देखो! नीचे अर्थ है न? **इस प्रकार पर गुण-पर्यायें...** अर्थात्? चार ज्ञान, विभाव-रागादि, **होने पर भी, उत्तम पुरुषों के हृदयकमल में कारणआत्मा विराजमान है।** आहा..हा..! अन्तर में आनन्दस्वरूप भगवान कारणपरमात्मा, कार्य का कारण अन्दर त्रिकाल विराजमान है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : उत्तम पुरुष को न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्तम पुरुष के हृदय में। भान नहीं, उसे क्या? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : सब जीवों को....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं; भान हो, उसे विराजमान है। भान नहीं, उसे क्या है ? वह तो पामर होकर पड़ा है। समझ में आया ? आहा..हा..! ऐसी बात दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं नहीं है। किसी जगह गन्ध नहीं है।

मुमुक्षु : क्यों नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे कहाँ से ? विपरीत दृष्टि करके तो सब खड़े हुए हैं। यह तो सनातन सर्वज्ञ परमेश्वर, त्रिलोकनाथ का प्रवाह सन्तों के पास तो है। दिगम्बर मुनि तो पूर्व के प्रवाह में वे तो जुड़ गये हैं। समझ में आया ? बात तो देखो न! ऐसा एक श्लोक देखो, तत्त्व देखो मध्यस्थ से। ऐई!

उत्तम पुरुषों के हृदयकमल में (अन्तर आत्मा में) कारणआत्मा विराजमान है। जिसमें से कार्य होता है, ऐसा कारणस्वरूप भगवान तो तेरी चीज़ तू है। आहा..हा..! **अपने से उत्पन्न ऐसे उस परमब्रह्मरूप समयसार को...** वह आत्मा तो स्वयं से ही है। स्वयं ही है। **ऐसे उस परमब्रह्मरूप समयसार को कि जिसे तू भज रहा है,...** देखो! तू जिसे अन्दर में भज रहा है, उसे भज। **हे भव्यशार्दूल (भव्योत्तम)! तू शीघ्र भज; तू वह है।** आहा..हा..! वह तू है। भगवान ज्ञायकभाव ध्रुव नित्यानन्द प्रभु उसे भजता है तो भज। वह तू है। दूसरी कोई चीज़ तेरी है नहीं। ऐसा कहकर उसे स्वरूप का त्रिकाल का शरण लेने के लिये पुकारती है। वही उत्तम है, वह शरण है, वह मंगल आत्मा त्रिकाल है। द्रव्यदृष्टि में द्रव्य का आश्रय लेकर एकाग्र हुआ, वही आत्मा का भजन कहने में आता है। वही मोक्ष का मार्ग है। उससे ही मोक्ष होता है।

(***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)